EDUZONE: International Peer Reviewed/Refereed Multidisciplinary Journal (EIPRMJ),
ISSN: 2319-5045 Volume 14, Issue 2, July-December, 2025, Available online at: www.eduzonejournal.com

सामाजिक विकास में पारंपरिक ज्ञान का अनुप्रयोग

प्रदीप कुमार

सहायक प्राध्यापक, राठ महाविद्यालय, पैठाणी, पौडी, गढ़वाल, उत्तराखंड

सारांश

पारंपरिक ज्ञान उन विश्वासों और ज्ञान को संदर्भित करता है जो पीढ़ियों से चले आ रहे हैं और अक्सर ग्रामीण क्षेत्रों में अपनाए जाते हैं। इस ज्ञान में कृषि तकनीकों से लेकर औषधीय उपचारों तक, कई तरह की प्रथाएँ शामिल हैं। यह सांस्कृतिक पहचान बनाए रखने और समुदायों के भीतर स्थिरता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उत्तर-औद्योगिक युग ने प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भरता बढ़ा दी है, आधुनिक तकनीक ने पादप-आधारित दवाओं, सौंदर्य प्रसाधनों, स्वास्थ्य उत्पादों और हस्तशिल्प जैसे उत्पादों के उत्पादन को संभव बनाया है। हालाँकि, पारंपरिक ज्ञान आधुनिक तकनीक के साथ सह-अस्तित्व में रह सकता है या लुप्त हो सकता है। ब्रुंडलैंड रिपोर्ट ने सतत विकास की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसका उद्देश्य भविष्य की पीढ़ियों की अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता से समझौता किए बिना वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करना है (पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग, 1987)। भारत के प्रचुर संसाधन, जैसे पारंपरिक औषधियाँ, मानसून-पूर्व अनुष्ठान और पारंपरिक जल संचयन प्रणालियाँ, संरक्षण और स्थिरता में योगदान करती हैं। पारंपरिक ज्ञान प्रणालियाँ संसाधन प्रबंधन, जैव विविधता संरक्षण और जलवायु परिवर्तन अनुकूलन जैसे क्षेत्रों में मूल्यवान अंतर्दृष्टि और प्रथाओं की पेशकश करके सतत जीवन को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण हैं। पारंपरिक ज्ञान को सतत विकास प्रथाओं में एकीकृत करने से स्वदेशी समुदायों का दीर्घकालिक कल्याण सुनिश्चित होता है और भावी पीढ़ियों के लिए उनके ज्ञान की रक्षा होती है।

मुख्य बिंदु: पारंपरिक ज्ञान, सतत विकास, प्राकृतिक संसाधन, जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता ।

प्रस्तावना

पारंपरिक ज्ञान उन मान्यताओं और ज्ञान का एक व्यापक शब्द है जिनका हमारे पूर्वजों ने उपयोग किया है या जिन्हें उन्होंने आत्मसात किया है और जो आने वाली पीढ़ियों को विरासत में मिले हैं। पारंपरिक ज्ञान का दायरा बहुत व्यापक है। इसमें न केवल मात्र ज्ञान शामिल है, बल्कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान धारकों द्वारा अपनाई जाने वाली प्रथाएँ भी शामिल हैं। पारंपरिक ज्ञान धारक कोई भी हो सकता है जिसके पास विशिष्ट ज्ञान हो, चाहे वह किसी भी वर्ग, जाति, लिंग या योग्यता का हो। आमतौर पर, ये प्रथाएँ दुनिया के ग्रामीण क्षेत्रों में की जाती हैं। स्वदेशी लोग अपने पूर्वजों के ज्ञान के वाहक हैं,

और जैव विविधता संरक्षण कार्यक्रमों में उनकी प्रभावी भागीदारी से दुनिया भर में जैव विविधता का अधिक व्यापक और लागत प्रभावी संरक्षण और प्रबंधन संभव होगा (सोब्रेविला, 2008)। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि औद्योगिक युग के बाद प्राकृतिक संसाधनों पर मानव जाति की निर्भरता बढ़ी है। आधुनिक तकनीक के कारण, ये संसाधन और उनसे जुड़ा ज्ञान आज हमारे लिए पादप-आधारित दवाओं, सौंदर्य प्रसाधनों, स्वास्थ्य उत्पादों और हस्तशिल्प जैसे उत्पादों की एक दुनिया खोल रहे हैं। आधुनिक तकनीक का व्यापक रूप से उपयोग तकनीशियनों या विशेषज्ञों द्वारा पारंपरिक ज्ञान को नियंत्रित करने और उस पर एकाधिकार हासिल करने के लिए एक उपकरण के रूप में किया गया है। कुछ मामलों में, पारंपरिक ज्ञान आधुनिक तकनीक और ज्ञान के साथ सुचारू रूप से सह-अस्तित्व में रहा है।

दूसरों में, पूर्व का स्थान बाद वाले ने ले लिया है और वह लुप्त हो गया है। पश्चिमी स्पेन के अर्ध-ग्रामीण क्षेत्रों में किए गए एक अध्ययन से पता चला है कि "इस क्षेत्र में पारंपरिक ज्ञान की वैधता, जो अपनी ग्रामीण स्थिति के नुकसान और औद्योगिक क्षेत्रों से निकटता के कारण गंभीर रूप से खतरे में है। भविष्य का सबसे अच्छा तरीका पारंपरिक ज्ञान को बिना किसी अवमूल्यन या प्रतिस्थापन के आधुनिक ज्ञान में समाहित करना है। प्रसिद्ध ब्रुंडलैंड रिपोर्ट, जिसने पहली बार 'सतत विकास' की आधुनिक अवधारणा को प्रस्तुत किया, ने इसे 'ऐसे विकास के रूप में परिभाषित किया जो भविष्य की पीढ़ियों की अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता से समझौता किए बिना वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करता है (विश्व पर्यावरण और विकास आयोग, 1987)। सतत विकास और पारंपरिक ज्ञान की अवधारणाएँ इस तरह से परस्पर जुड़ी हुई हैं कि ये हमारी उपरोक्त चिंताओं का उत्तर दे सकती हैं। लोग परंपराओं की ओर रुख कर रहे हैं और स्थानीय लोगों को औद्योगिक जीवन शैली के स्थायी विकल्प खोजने और एक अस्थिर जीवन शैली से खतरे में पड़ी विविधता की रक्षा करने के लिए सशक्त बना रहे हैं।

स्थायी प्रथाएँ केवल उन गतिविधियों तक ही सीमित नहीं हैं जिनमें प्रकृति का संरक्षण शामिल है। बल्कि किसी व्यक्ति या समुदाय की दिन-प्रतिदिन की प्रथाओं पर भी लागू होता है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रकृति के साथ संतुलन बनाने में योगदान करती हैं। शून्य बजट प्राकृतिक खेती (ZBNF) को भारत के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा रसायनों पर निर्भर खेती के विकल्प के रूप में शुरू किया गया था। यह प्रणाली दक्षिणी भारत में, विशेष रूप से कर्नाटक राज्य में, 1990 के दशक के मध्य से ही अस्तित्व में

है। (राष्ट्रीय कृषि विज्ञान अकादमी, नई दिल्ली, 2019)। इसके अलावा, देश भर में कई जड़ी-बूटियाँ/औषधीय काष्ठीय वनस्पति हैं जिनका उपयोग स्थानीय लोग विभिन्न रोगों के उपचार के लिए करते हैं और इस ज्ञान का बहुत कुछ अभी भी अलिखित है।

सामग्री और विधियाँ-

यह अध्ययन सतत विकास प्रथाओं में पारंपरिक ज्ञान के एकीकरण का पता लगाने के लिए एक द्वितीयक डेटा अनुसंधान दृष्टिकोण पर आधारित है। इस शोध अध्ययन में शैक्षणिक पत्रिकाओं, पुस्तकों, सरकारी प्रकाशनों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के संसाधनों से गुणात्मक डेटा का उपयोग किया गया है।

महत्व-

पारंपरिक ज्ञान धारक एक स्थायी भविष्य की ओर बढ़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, उनका ज्ञान, प्रथाएँ और सामाजिक व्यवहार संसाधनों के विवेकपूर्ण और सामाजिक भलाई के उपयोग को दर्शाते हैं। इस संदर्भ में भारत प्रचुर रूप से समृद्ध है। गौरा पर्व जैसे सांस्कृतिक त्योहार विरासत का जश्न मनाते हैं और पर्यावरण संरक्षण और सामुदायिक बंधन को बढ़ावा देने वाली प्रथाओं को समाहित करते हैं। यह प्राचीन हिंदू त्योहार प्रकृति से जुड़े सांस्कृतिक मूल्यों के पुनरुत्थान का प्रतिनिधित्व करता है, जो अनुष्ठानों और विश्वासों के माध्यम से स्थायी प्रथाओं पर जोर देता है। ऐसी परंपराओं का सम्मान करके, समुदाय अपने पर्यावरण के साथ गहरे संबंध बना सकते हैं और पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास को बढ़ावा दे सकते हैं (अवस्थी, 2024)। पारंपरिक ज्ञान भारत में ग्रामीण समुदायों के आर्थिक सशक्तिकरण को भी महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, स्थानीय उत्पादों, जैसे हर्बल दवाओं और पारंपरिक पेय पदार्थों की तैयारी और व्यावसायीकरण से संबंधित स्वदेशी ज्ञान, इन समुदायों के लिए आय के वैकल्पिक स्रोत प्रदान करता है। उरांव जनजाति (मालदा ज़िला) द्वारा स्थानीय पेय चुल्लू का उत्पादन एक सांस्कृतिक प्रथा है और स्थानीय आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाता है। चुल्लू उत्पादन उनकी संस्कृति, पहचान, मिथकों और आध्यात्मिक प्रथाओं का एक अभिन्न अंग है।

औषधीय रूप से महत्वपूर्ण पौधों से पेय तैयार करने का उनका पारंपरिक तरीका उन्हें क्षेत्र के अन्य आदिवासी समुदायों से अलग करता है। हालाँकि, पेय बनाने की विधि एक रहस्य है और पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से आगे बढ़ती है। इसके अलावा, वे इस स्थानीय पेय को बेचकर अच्छी कमाई भी करते हैं। इस प्रकार, पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों को मान्यता और बढ़ावा देने से स्थायी आजीविका को बढ़ावा मिल सकता है, खासकर समाज के हाशिए पर पड़े वर्गों के लिए (साहा एट अल, 2015)। जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन क्षमता निर्माण हेतु पारंपरिक ज्ञान को एक मूल्यवान संपत्ति के रूप में तेजी से मान्यता मिल रही है। स्वदेशी समुदायों के पास मौसम के पैटर्न, पारिस्थितिक संकेतकों और सतत संसाधन प्रबंधन के बारे में विस्तृत जानकारी होती है, जिससे उनका ज्ञान अनुकूलन रणनीतियों को सूचित करने के लिए महत्वपूर्ण हो जाता है। जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में, सूखा-प्रतिरोधी कृषि और जल संरक्षण जैसी पारंपरिक प्रथाएँ खाद्य सुरक्षा और पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए अमूल्य हैं। पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान मदद करता है समुदायों को पर्यावरणीय दबावों का सामना करने और सामाजिक-पारिस्थितिक प्रणालियों के लचीलेपन को बढ़ावा देने में मदद करता है। सतत विकास के माध्यम से पारंपरिक ज्ञान को पुनर्जीवित करना सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण है। पारंपरिक ज्ञान को सतत विकास प्रथाओं में एकीकृत करके, हम स्वदेशी समुदायों के दीर्घकालिक कल्याण को सुनिश्चित कर सकते हैं और आने वाली पीढ़ियों के लिए उनके अमूल्य ज्ञान की रक्षा कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, यह दृष्टिकोण विकास के प्रति एक अधिक समग्र और संतुलित दृष्टिकोण को बढ़ावा देता है जो प्रकृति और मानव समाजों के अंतर्संबंध का सम्मान करता है।

चुनौतियाँ-

पारंपरिक ज्ञान धारकों की घटती जनसंख्या:

पारंपरिक ज्ञान धारकों की जनसंख्या घट रही है। ये व्यक्ति, अक्सर बुजुर्ग या समुदाय के नेता, अमूल्य सांस्कृतिक, पारिस्थितिक और औषधीय ज्ञान रखते हैं जो पीढ़ियों से चला आ रहा है। यह ज्ञान स्थानीय समुदायों की स्थिरता और जैव विविधता एवं सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के लिए आवश्यक है।

ज्ञान धारकों की आर्थिक स्थिति, लाभ-साझाकरण तंत्र का खराब कार्यान्वयन:

अधिकांश पारंपरिक ज्ञान धारक प्रकृति की गोद में रहते हैं, आमतौर पर दूरस्थ स्थानों पर जहाँ आर्थिक अवसर न्यूनतम हैं। ये व्यक्ति अपनी आजीविका के लिए जैव विविधता द्वारा प्रदान किए जाने वाले प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर हैं, जिससे संरक्षण के प्रयास उनके कल्याण के लिए महत्वपूर्ण हो जाते हैं। भारत के मामले में, जैविक विविधता अधिनियम, 2002 पहुँच और लाभ साझाकरण के माध्यम से स्वदेशी समुदायों की मदद करने का प्रयास करता है। पहुँच और लाभ साझाकरण (एबीएस) जैविक विविधता पर अभिसमय (सीबीडी) का एक प्रमुख घटक है, जिसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि आनुवंशिक संसाधनों के उपयोग से प्राप्त लाभों को उन संसाधनों को प्रदान करने वाले देशों और समुदायों के साथ निष्पक्ष और समान रूप से साझा किया जाए। जागरूकता की कमी और एबीएस तंत्र का खराब कार्यान्वयन पारंपरिक ज्ञान धारकों की अपने संसाधनों से लाभ उठाने की क्षमता में बाधा डालता है।

हितधारकों की कम भागीदारी:

एबीएस निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में विविध हितधारकों को प्रभावी ढंग से शामिल करना एक और महत्वपूर्ण चुनौती है। विभिन्न पक्षों, जिनमें स्वदेशी समुदाय, सरकारें और उद्योग शामिल हैं, के अक्सर परस्पर विरोधी हित और दृष्टिकोण होते हैं, जिससे एबीएस

समझौतों पर आम सहमति बनाना मुश्किल हो जाता है। प्रभावी संवाद और संचार माध्यमों का अभाव इस समस्या को और बढ़ा देता है, जिससे अविश्वास और संभावित हितधारक संघर्ष पैदा होते हैं।

पीबीआर में पारंपरिक ज्ञान का धीमा और खराब दस्तावेज़ीकरण:

हालाँकि सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के पास एक निश्चित संख्या में पीबीआर हैं, लेकिन उन्हें पूरा करने और अद्यतन करने की प्रक्रिया धीमी और अक्षम है। इससे निर्णय लेने के लिए पुरानी या अधूरी जानकारी का उपयोग हो सकता है। पीबीआर का उद्देश्य किसी समुदाय के भीतर वनस्पतियों, जीवों और पारंपरिक ज्ञान की विविधता का दस्तावेज़ीकरण करना है, लेकिन कई कारक टीके को पकड़ने और संरक्षित करने में उनकी प्रभावशीलता में बाधा डालते हैं।

पारंपरिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण में चुनौतियाँ

पीबीआर:-

1. कुशल कर्मियों की कमी
2. अपर्याप्त संसाधन
3. सामुदायिक जुड़ाव
4. भाषा संबंधी बाधाएँ
5. ज्ञान की जटिलता

तालिका 1: राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण, चेन्नई के अनुसार, प्रत्येक राज्य/संघ राज्य क्षेत्र में पीबीआर की कुल संख्या।
क्रम संख्या राज्य पीबीआर की संख्या

क्र. सं	स्टेट	न. ऑफ़ पीबीआर.
1	आंध्र प्रदेश	14157
2	अरुणाचल प्रदेश	1806
3	असम	2549
4	बिहार	9101
5	छत्तीसगढ़	10056
6	गोवा	205
7	गुजरात	14716
8	हरियाणा	6444
9	हिमाचल प्रदेश	3776
10	झारखण्ड	4689
11	कर्नाटक	6554
12	केरल	1034
13	मध्य प्रदेश	23557
14	महाराष्ट्र	28649
15	मणिपुर	199
16	मेघालय	6484
17	मिजोरम	894
18	नागालैंड	1276
19	ओडिशा	7256
20	राजस्थान	11882
21	पंजाब	13599
22	सिक्किम	196

23	तमिलनाडु	13615
24	तेलंगाना	13461
25	त्रिपुरा	1264
26	उत्तराखंड	7991
27	उत्तर प्रदेश	59407
28	पश्चिम बंगाल	3830
	कुल (ए)	**268647**
	टेबल बी.	
1	अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	71
2	चंडीगढ़	1
3	दमन और दीव	44
4	दिल्ली	0
5	जम्मू और कश्मीर	4366
6	लद्दाख	6
7	लक्षद्वीप	10
8	पुडुचेरी	0
	कुल (बी)	4498
	जी. कुल (ए+बी)	**273145**

निष्कर्ष

पारंपरिक ज्ञान सतत विकास का एक महत्वपूर्ण स्तंभ है, जो संसाधन प्रबंधन, सांस्कृतिक संरक्षण और जलवायु लचीलेपन के बारे में समय-परीक्षित अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। हालाँकि, अपने अपार मूल्य के बावजूद, पारंपरिक ज्ञान को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जिनमें ज्ञान धारकों की घटती संख्या, अपर्याप्त आर्थिक प्रोत्साहन, लाभ-साझाकरण तंत्र का खराब कार्यान्वयन और धीमी दस्तावेज़ीकरण प्रक्रियाएँ शामिल हैं। कुशल कर्मियों की कमी, सीमित संसाधन और भाषा संबंधी बाधाएँ इस ज्ञान के उचित संरक्षण और संचरण में और बाधा डालती हैं। पारंपरिक ज्ञान को वास्तव में पुनर्जीवित करने के लिए, मजबूत नीति कार्यान्वयन, समावेशी हितधारक जुड़ाव और समुदाय-नेतृत्व वाले दस्तावेज़ीकरण प्रयास। पहुँच और लाभ साझाकरण (एबीएस) तंत्र को मज़बूत करना और जन जैव विविधता रजिस्टर (पीबीआर) में सुधार करना यह सुनिश्चित करने में मदद कर सकता है कि पारंपरिक ज्ञान धारकों को उनकी उचित मान्यता और लाभ प्राप्त हों। अंततः, पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक टिकाऊ प्रथाओं के साथ एकीकृत करने से हम एक अधिक समतापूर्ण, लचीले और पारिस्थितिक रूप से सामंजस्यपूर्ण भविष्य की ओर अग्रसर होंगे।

भविष्य की संभावनाएँ-

सतत विकास के माध्यम से पारंपरिक ज्ञान को पुनर्जीवित करना केवल अतीत की रक्षा करना नहीं है; यह एक ऐसे भविष्य का निर्माण करना है जहाँ संस्कृतियाँ, पारिस्थितिकी तंत्र और अर्थव्यवस्थाएँ सामंजस्य के साथ फल-फूलें। स्वदेशी और स्थानीय समुदायों की अंतर्दृष्टि को महत्व देकर हम दुनिया की कुछ सबसे ज़रूरी चुनौतियों का समाधान कर सकते हैं, जैसे जलवायु परिवर्तन के साथ-साथ सांस्कृतिक सम्मान और सामाजिक समानता को बढ़ावा देना। इस तरह, हम पारंपरिक ज्ञान और समकालीन ज्ञान दोनों की शक्तियों को मिलाकर आने वाली पीढ़ियों के लिए एक अधिक टिकाऊ, लचीला और समावेशी विश्व बना सकते हैं। उल्लेखनीय रूप से, भारत जैविक विविधता अधिनियम, 2002 के प्रावधानों के माध्यम से पारंपरिक ज्ञान की स्थिरता का समर्थन करता है। अधिनियम की धारा 41 कहती है, "प्रत्येक स्थानीय निकाय अपने क्षेत्र में एक जैव विविधता प्रबंधन समिति का गठन करेगा ताकि जैविक विविधता के संरक्षण, सतत उपयोग और प्रलेखन को बढ़ावा दिया जा सके, जिसमें आवासों का संरक्षण, भूमि प्रजातियों, लोक किस्मों और कल्टीवेटरों का संरक्षण, पालतू पशुओं और सूक्ष्मजीवों की नस्लें और जैविक विविधता से संबंधित ज्ञान का वृत्तांत शामिल है (राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण, 2003)। स्वदेशी समुदायों (पारंपरिक ज्ञान अभ्यासियों) को न केवल अपने ज्ञान के वितरण की प्रक्रिया का हिस्सा होना चाहिए, बल्कि निर्णय लेने और नीति नियोजन में भी व्यापक भूमिका निभानी चाहिए। साथ ही, पारंपरिक ज्ञान डिजिटल लाइब्रेरी (TKDL) जैसी पहलों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। स्वदेशी लोगों को भूमि पर स्वामित्व का अधिकार प्रदान करना, संसाधनों तक पहुँच प्रदान करना और सांस्कृतिक अखंडता को मज़बूत करना लाभकारी हो सकता है। अवमूल्यन और

दुरुपयोग से बचने के लिए, सरकारों को ऐसे पारंपरिक ज्ञान के उपयोग से होने वाले लाभों के समान बंटवारे को प्रोत्साहित और बढ़ावा देना चाहिए। गैर-सरकारी संगठन (NGO) विभिन्न विकासात्मक पहलों के माध्यम से पारंपरिक ज्ञान को बढ़ावा देने और संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। वे अक्सर पारंपरिक कारीगरों और किसानों के लिए संसाधनों, कौशल प्रशिक्षण और बाज़ार के अवसरों तक पहुँच को सुगम बनाते हैं, जिससे पारंपरिक प्रथाओं और आधुनिक आर्थिक मॉडलों के बीच की खाई को पाटा जा सकता है। इसके अलावा, गैर सरकारी संगठनों द्वारा विकसित समुदाय-आधारित पुस्तकालय पारंपरिक पारिस्थितिक प्रथाओं के महत्व के बारे में ज्ञान के प्रसार और जागरूकता को बढ़ावा देते हैं, जिससे सामुदायिक जुड़ाव और शिक्षा (प्याति एवं कमल 2012)। हम, कर्तव्यपालक के रूप में, अपने ज्ञान और कौशल का उपयोग करके स्वयं को पारंपरिक ज्ञान के संवर्धक और/या संरक्षक के रूप में स्थापित कर सकते हैं ताकि समग्र रूप से समाज का सतत विकास हो सके। आभार लेखक राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण, चेन्नई और हरियाणा राज्य जैव विविधता बोर्ड, पंचकूला के प्रति उनके निरंतर मार्गदर्शन और सहयोग के लिए हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. अवस्थी, पी. के. (2024). सेलिब्रेशन ऑफ़ नेचर एंड कल्चर थ्रो गौरा प्रभा: एन इंटरडिसिप्लिनरी स्टडी ऑफ़ एनवायर्नमेंटल स्तेवार्ड्सशिप एंड कल्चर ससटेनेबिलिटी. एनपीआरसी जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च, 1(2), 110-121.
2. एनएएएस (2019). जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग- अ मिथ ऑर रियलिटी? पालिसी पेपर न. 90, नेशनल अकादमी ऑफ़ एग्रीकल्चरल साइंसेज, न्यू डेल्ही: पृ. सं.20
3. राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण (2003). द बायोलॉजिकल डाइवर्सिटी एक्ट 2002 एंड बायोलॉजिकल डाइवर्सिटी रूल्स, 2004.
4. प्याति, ए. के. और कमल, ए. एम. (2012). एनजीओ- डेवलप्ड लाइब्रेरीज इन इंडिया: इम्पक्ट्स, मॉडल्स, एंड न्यू पोसिबिलीटीज.
5. पीपल्स बायोडाइवर्सिटी रजिस्टर. रीट्रीव फ्रॉम http://nbaindia.org/content/105/30/1/pbr.htm